हमारे पाठ्यक्रमों में केस-स्टडी का अभाव

हमारे देश में समस्याएं बहुत हैं। इन समस्याओं से निपटने और विकास की ओर अग्रसर होने के लिए हमें विचारधाराओं को तथ्यों के धरातल पर लाने की आवश्यकता है। यह काम हमारे उच्च शिक्षण संस्थान ही कर सकते हैं। ऐसा करने के लिए उनके पास दो रास्ते हो सकते हैं।

- समस्या से जुड़े डाटा और दस्तावेजों को छानना, इसके एजेंटों की भूमिका को समझना, प्रक्रिया के लाजिस्टिक एवं वैज्ञानिक आधार को समझना तथा इसमें सामाजिक मूल्य एवं सांस्कृतिक कौशल का इस्तेमाल करते हुए उसके परिणामों का मूल्यांकन करना।
- विद्यार्थी अपनी पसंद के विषय के अनुसार केस स्टडी करें। उदाहरण के लिए एक समाजशास्त्र का विद्यार्थी अपने तालुका में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की स्थिति पर रिपोर्ट तैयार कर सकता है। इस प्रकार की केस स्टडी से हमारी फंडिंग एजेंसी को एक विश्वसनीय आधार मिलने के साथ-साथ रोजगार के बेहतर अवसर प्रदान करने की सुविधा हो सकेगी।

भारत में अकादमिक संस्थानों द्वारा अन्वेषण, शोध एवं केस स्टडी करने की संस्कृति का प्रचलन नही के बराबर है। इसका बहुत बड़ा कारण हमारे पाठ्यक्रम का जीवन के वास्तविक धरातल से भिन्न होना है। ऐसी विडंबना प्राथमिक विद्यालय के पाठ्यक्रम से लेकर उच्च शिक्षा तक देखी जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों के लोग अपनी जमा पूंजी बच्चों को सीबीएसई के अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में पढ़ाने पर लगा रहे हैं। सीबीएसई का पाठ्यक्रम शहरी, वेतनभोगी वर्ग के अनुसार बनाया गया है। इसमें महानगरों से जुड़ी समस्याओं को अधार बनाया गया है। दूसरे, इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य बच्चों को प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए तैयार करने से भी जुड़ा लगता है। उदाहरण के लिए ग्यारहवीं-बारहवीं के पाठ्यक्रम में लगभग 50 पृष्ठ परमाणु पर लिखे गए हैं। जबकि वर्तमान में पनप रही जल समस्या का इसमें कोई विवरण नहीं है। उच्च शिक्षा में भी ऐसी ही विसंगतियां हैं। हमारे तकनीकी संस्थानों ने अपने को विज्ञान के वैश्विक स्तर की

व्यापक सीमा और उत्कृष्टता से जोड़ लिया है, और वे अपने को केस-स्टडी में फंसाना अपने लक्ष्य से भटकाव और अपना अवमूल्यन समझते हैं।

दरअसल, हमारा पाठ्यक्रम औपनिवेशिक साम्राज्य के समय पर आधारित है, जब एक सक्षम नौकरशाही को तैयार करना ही लक्ष्य हुआ करता था।हमारे सरकारी विश्वविद्यालय वर्षों की उपेक्षा के कारण केवल प्रमाण पत्र प्राप्त करने का जरिया बने हुए हैं। इनका उपयोग सरकारी नौकरी पाने एवं मंत्रालय के आंकड़ों के लिए पंजीकरण संख्या को बढ़ाने हेतु किया जा रहा है। इन सबका नतीजा यह हो रहा है कि राज्य सार्वजनिक सेवाओं की पूर्ति में अक्षम होते जा रह हैं, और वे निजीकरण की आड़ ले रहे हैं।

देश में विकासात्मक सेवाओं की अत्यंत आवश्यकता होने के बावजूद प्रयोग के स्तर पर काम बहुत ही कम किया जा रहा है। ऐसे में यह तंत्र कब तक टिक पाएगा?

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित मिलिंद सोहनी के लेख पर आधारित।